The Economic Times

Date: 20-02-18

Up The Game On Bank Scam Spotting

ET Editorials

Internal controls, audit of banks and reconciliation of interbank claims and liabilities, including contingent liabilities, are ripe for overhaul, in the wake of the huge fraud at Punjab National Bank (PNB). If crooked bank employees issue letters of undertaking (LoU) to an importer, transmit the LoU through the SWIFT system for international banking transactions without allowing this fact to the recorded in the issuing bank's Core Banking System (CBS), and then corner the acknowledgement of the LoU transmission by the foreign counterparty bank that issues credit to the importer, auditors of the two banks would fail to capture the fraud.

The foreign lender to the importer makes a secured loan, on the strength of the LoU issued by PNB. At the same time, such an LoU does not exist on PNB's books. This mismatch cannot be spotted by the auditors of PNB or of the foreign lender, acting independently. For that to come out, auditors of the two banks must carry out reconciliation of their claims and liabilities, including contingent liabilities against each other. A procedure for such reconciliation does not exist as of now. It is conceivable that if the foreign lender credited the loan to PNB's own nostro account (foreign currency account abroad), a banking regulator-led initiative to reconcile the bank's own claimed assets and liabilities could identify the mismatch. But there is no reason to assume that an LoU would be honoured only by an overseas branch of an Indian bank or that the money would be credited to the nostro account of PNB or of another Indian bank. If a foreign bank is the lender and holder of the account in which the loan is credited, a purely domestic reconciliation effort would not work.

SWIFT messages must automatically be copied to the banking regulator of each country. Foreign currency accounting of every bank would then have to reflect the international obligations it picks up. Apart from tightening internal controls at Indian banks, the RBI must work to amend the SWIFT platform to cater to the special requirements of the Indian banking system.

Date: 20-02-18

No Way To Raise Ease Of Doing Business

ET Editorials

Markets regulator Sebi and Indian exchanges need to review their recent decision not to share data with foreign exchanges that trade derivatives on Indian stocks. Simply clamping down on securities data-sharing is no way to prevent the market for Indian underlyings moving abroad. The way forward is to rationalise the rules, transaction costs and trading hours for equity, currency and commodity derivatives products, so as to have a thriving futures and options market here and attendant risk management skills.

Securities exchanges are highly networked entities, and it is not in the interest of Indian markets to unilaterally black out data and price discovery with counterparts abroad. It is true that rupee and Nifty derivatives are increasingly traded outside India, but there are network benefits too. Such trading results in global price discovery of the Indian underlyings, and cost-effective hedging of risk for foreign investors in the Indian market, which would very much be in the interest of domestic investors, besides of their foreign counterparts.

We do need to review our norms on securities tax, stamp duties, margin requirements, position limits and even participation rules for derivatives, which are now accepted as standard risk-management products globally. Without a thriving derivatives market, we cannot have an attractive bond market and modern, transparent arm's-length finance. It follows that without modern futures and options markets, the entire economy would be affected. And cutting ourselves off from international markets, by fiat, is atavistic, draconian and a throwback to pre-reform days. In a fast-growing, globalising economy, the gag order on data exchange is incongruous and shakes the confidence of the rest of the world in the Indian economy.

दैनिक जागरण

Date: 20-02-18

विवेकहीन विरोध का सिलसिला

पद्मावत फिल्म के विरोधी या तो अपने उस विरोध के औचित्य को सिद्ध करें या फिर माफी मांगने की उदारता दिखाएं

डॉ. विजय अग्रवाल ,(लेखक पूर्व प्रशासनिक अधिकारी हैं)

फिल्म पद्मावत से जुड़ा विवाद शांत होने के बाद एक मलयालम फिल्म के गाने पर आपत्ति जता दी गई है, जबकि जिस गाने का विरोध किया जा रहा है वह केरल में करीब 40 वर्षों से अलग-अलग स्तरों पर इस्तेमाल होता चला आ रहा है। कहना कठिन है कि इस फिल्म का विरोध करने वाले किस हद तक जाएंगे, लेकिन इससे इन्कार नहीं कि आने वाले वक्त में कोई भारतीय समाज के इतिहास को 'प्री पद्मावत पीरियड' और 'पोस्ट पद्मावत पीरियड' के रूप में व्याख्यायित न करे। फिल्म जैसा एक काल्पनिक एवं मनोरंजक माध्यम समाज और राजनीति में इतना विकराल तूफान ला सकता है, शायद इसके बारे में इससे पहले किसी ने नहीं सोचा होगा। इस तथ्य को केवल यही पीढ़ी सोच और महसूस कर सकती है जिसने इस दौर में किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अपनी आंखों के सामने से इस मंजर के कारवां को गुजरते हुए देखा और उससे उत्पन्न भय, निरीहता एवं चिंता को महसूस भी किया। यह शायद पहला अवसर था जब कुछ लोगों की जिद और अविवेक ने इतने लंबे समय तक कई राज्यों के लोकतांत्रिक अधिकारों को अपना बंदी बनाकर रखा। विशुद्ध राजनीतिक लाभ से संचालित कुछ राजनीतिक सत्ताओं ने इस तथाकथित सेना के समक्ष घुटने टेककर अपने लोगों को जिस प्रकार इन जिद्दी लोगों के रहमोकरम पर छोड़ दिया उसने लोगों के मन में न केवल अपनी सुरक्षा के प्रति जबरदस्त अविश्वास का भाव पैदा किया, बल्कि राज्य की शक्ति एवं उसकी कर्तव्यपरायणता के प्रति भी संदेह का बीज बो दिया।

जो सत्ता में थे उन्होंने एक समुदाय की कथित जातिगत शान के समक्ष यदि समर्पण करके उन्हें उकसाया तो लगभग अन्य सभी दलों ने इस मामले में मौन साधकर उनका साथ दिया। जिन लोगों के मत इनके अस्तित्व का आधार हैं उन्हें अपनी लड़ाई खुद लड़ने के लिए छोड़ दिया गया। 'पद्मावती' से 'ई' हटाकर उसका नाम पद्मावत करने के बाद ही फिल्म रिलीज की गई, फिर भी अविवेकी विरोधियों को चैन नहीं आया। जिन लोगों ने पद्मावत फिल्म देखी उनमें से ज्यादातर ने सराहना भी की। उन्हें समझ में नहीं आया कि आखिर विरोध था किस बात का? दरअसल यह प्रश्न उनसे है जिन्होंने एक अपवित्र एवं असंवैधानिक गठबंधन करके जनता को उसके फिल्म देखने के अधिकार से वंचित किया। संविधान द्वारा प्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार सीधे-सीधे सुनने, देखने और पढ़ने के अधिकार से भी जुड़ा हुआ है। ये दोनों जुड़वां हैं और अभिन्न रिश्तों की अनदेखी नहीं की जा सकती। भले ही इसका स्पष्ट उल्लेख संविधान के किसी अनुच्छेद में न हो। मतदान केवल चुनावों के दौरान ही नहीं होते। ये अपने अन्य छोटे-छोटे अप्रत्यक्ष रूपों में भी स्वयं को अभिव्यक्त करते रहते हैं। लाखों लोगों ने यह फिल्म देखी। इसी कारण इस फिल्म की गिनती एक सफल फिल्म के तौर पर की जा रही है। क्या यह 'देखना' और 'सराहना' एक तथाकथित सेना एवं कुछ राज्य सरकारों के प्रति अविश्वास प्रस्ताव से कम है? इससे यह भी प्रश्न खड़ा होता है कि क्या एक समुदाय की आस्था जो पूरी तरह अनैतिहासिक एवं अप्रामाणिक है, की रक्षा के लिए समस्त राष्ट्र की आस्था को बंधक बनाया जा सकता है?

चूंकि पद्मावत के मामले में ऐसा ही हुआ इसलिए कोई भी पूछ सकता है कि स्वतंत्र देश का नागरिक होने के नाते उसकी आस्था की रक्षा क्यों नहीं हुई? एक राज्य के मुख्यमंत्री के ऊपर तो निजी आस्था के आवेग ने इतना जोर मारा कि उन्होंने 'पद्मावती' को एक तरह से राजमाता ही घोषित कर दिया। विवाद शांत होने के बाद आप निजी तौर पर राजपूत समुदाय के कई लोगों से इस मुद्दे पर बात करके देखें। आपका यह अनुभव आपको आश्चर्य में डाल देगा कि व्यक्तिगत स्तर पर कोई भी पद्मावत के विरोध में नहीं था। इसका एक प्रमाण राजस्थान में हुए लोकसभा एवं विधानसभा की कुल तीन सीटों के लिए हुए उपचुनावों के नतीजों से भी मिल गया। इन तीनों सीटों पर करणी सेना के साथ खड़ी सत्तारूढ़ पार्टी न केवल हारी, बल्कि बुरी तरह हारी। क्या इससे जरूरी सबक सीख लिया गया है? समुदायों के अपने हित होते हैं

और अपनी समझ भी, लेकिन राजव्यवस्था के हित पार्टी के हित से बड़े होने चाहिए। सत्ता के निर्णयों एवं पार्टी के हितों के बीच का गठबंधन यदि एक सीमा के परे जाता है तो उसके कुछ दुष्परिणाम देश को तो भुगतने ही पड़ते हैं, देर-सवेर पार्टी को भी भुगतने पड़ेंगे। जनता बहुत सतर्क, लेकिन मूक पर्यवेक्षक होती है। उसे मूर्ख समझने की भूल सबसे बड़ी मूर्खता होगी, फिर समझने वाला चाहे एक व्यक्ति हो अथवा व्यक्तियों का समूह।

पद्मावत फिल्म अभी तक लगभग तीन सौ करोड़ रुपये कमा चुकी है। इनमें से करीब सौ करोड़ रुपये सरकारी खजाने में गए हैं। सरकारी खजाने को जनता का खजाना कहा जाता है। आंदोलन और अराजकता के कारण जो ध्वंस होता है उसके हर्जाने की तो बात की जाती है, लेकिन इस तरह के नुकसान का क्या? यदि किसी व्यक्ति या संगठन का कोई अवैध कृत्य किसी भी रूप में राजकोष की प्राप्ति में बाधा डालता है तो क्या वह अपराधी नहीं है? दोनों को समान माना जाना चाहिए-राजकोष का अपव्यय करने वाले को और जानबूझकर आय को रोकने वाले को भी। आखिर 2जी स्पेक्ट्रम घोटाले ने भी तो राजकोष में धन आने से रोका था। इस फिल्म के रिलीज होने के बाद हालात सामान्य होने का यह मतलब नहीं कि जो कुछ हुआ उसे भुला दिया जाए? यह इसलिए नहीं भुलाया जाना चाहिए, क्योंकि देश को यह जानने का जायज हक नहीं मिल पा रहा कि 'आखिर इसका इतना विकराल विरोध किया क्यों किया गया था? सिर काटकर लाने वालों को करोड़ों का इनाम देने और शौर्य की बड़ी-बड़ी बातें करके राष्ट्र की चेतना को कुंठित एवं सुन्न कर देने वालों को अब चाहिए कि वे राष्ट्र के सामने अपने उस विरोध के औचित्य को सिद्ध करें और यदि सिद्ध नहीं कर पा रहे तो कम से कम अपनी गलती को स्वीकार करके देश से माफी मांगने की उदारता ही दिखा दें, ताकि भविष्य में कोई भी संगठन इस तरह का विवेकहीन कदम उठाने से पहले कम से कम सोचने की तो जहमत उठाए।

जनसत्ता

Date: 20-02-18

पारदर्शिता का तकाजा

संपादकीय

संसदीय लोकतंत्र सुचारु रूप से और संतोषजनक ढंग से काम करे, इसके लिए जरूरी है कि हमारी विधायिका में वही लोग जाएं जिनका दामन पाक-साफ हो। पर तथ्य बताते हैं कि हर चुनाव के बाद संसद और विधानसभाओं में ऐसे लोगों की संख्या और बढ़ जाती है जिनकी आय और संपत्ति के बीच कोई तार्किक मेल नहीं होता। इस पर लगाम कसने के मकसद से चुनाव के लिए पर्चा भरते समय उम्मीदवारों को अपनी, जीवनसाथी और आश्रितों की संपत्ति का ब्योरा देना अनिवार्य किया गया। पर इससे उनकी बेतहाशा कमाई पर रोक लग पाना मुश्किल ही बना रहा है। ऐसे में सर्वोच्च न्यायालय के ताजा फैसले से कुछ बेहतर नतीजे की उम्मीद बनी है।

न्यायालय ने कहा है कि सभी उम्मीदवारों को अपनी, जीवनसाथी और आश्रितों की संपत्ति का ब्योरा देने के साथ-साथ सब की आय का स्रोत भी बताना होगा। यह भी स्पष्ट करना होगा कि उनकी या उनके किसी परिजन की कंपनी ने कभी सरकारी टेंडर हासिल किया या नहीं। अदालत ने सरकार को निर्देश दिया है कि वह एक ऐसा तंत्र विकसित करे, जो जनप्रतिनिधियों की संपत्ति में वृद्धि पर नजर रखे और उनके खिलाफ जांच या कार्रवाई की सिफारिश कर सके। अदालत

ने कहा है कि एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिए चुनाव प्रक्रिया की पवित्रता बेहद जरूरी है; सांसदों-विधायकों द्वारा संपत्ति की जमाखोरी पर रोक नहीं लगाई गई तो यह सिलसिला लोकतंत्र के विनाश की ओर बढ़ेगा और इससे माफिया राज का रास्ता खुल जाएगा।

ऐसे अनेक राजनीतिकों के उदाहरण मौजूद हैं, जो बहुत कमजोर आर्थिक पृष्ठभूमि से आकर चुनाव लड़े, फिर लोकसभा या विधानसभा में पहुंचे और पांच साल बाद उनके पास करोड़ों की संपत्ति आ गई। इसका खुलासा भी उनके अगली बार चुनाव का पर्चा भरते समय दाखिल हलफनामे से हो जाता है। जाहिर-सी बात है, वह सब उन्होंने जनप्रतिनिधि के तौर पर मिले अपने वेतन के बल पर अर्जित नहीं किया होगा। एक अध्ययन के मुताबिक सैंतीस सांसदों और दो सौ सत्तावन विधायकों की संपत्ति में बेहद अतार्किक वृद्धि हुई। पांच गुने से लेकर करीब इक्कीस गुना तक। इस तरह धन-संपत्ति जुटाने में उन्हें हिचक इसलिए नहीं होती थी क्योंकि यह बताना अनिवार्य नहीं था कि उन्होंने उसे किन स्रोतों से हासिल किया। अब सर्वोच्च न्यायालय के ताजा आदेश के बाद उन्हें बेतहाशा संपत्ति जुटाने में शायद कुछ संकोच हो।

अगर उस पर नजर रखने और उसके बारे में पूछताछ करने का कोई कारगर तंत्र विकसित होगा, तो उनकी संपत्ति की भूख पर निस्संदेह कुछ लगाम लगेगी। यह भी होगा कि बहुत-से लोग अपनी संपत्ति का सही ब्योरा पेश करने के बजाय उसे छिपाएंगे। बेनामी संपत्ति पर काबू पाना सरकार के लिए अब भी बड़ी चुनौती है। फिर अपने परिजनों, नजदीकी रिश्तेदारों के नाम कंपनियां खोल कर जुटाई गई धन-संपत्ति अलग मसला है। जनप्रतिनिधियों के पास आय से अधिक संपत्ति आना भ्रष्टाचार पर काबू पाने में बड़ी बाधा है। यह भी स्पष्ट है कि इससे चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता लाने, चुनाव खर्च पर लगाम कसने और मतदाताओं को धनबल के जरिए प्रभावित करने की प्रवृत्तियों को रोकना मुश्किल बना हुआ है। इस चुनौती से पार पाया जा सकता है अगर सर्वोच्च न्यायालय के ताजा आदेश का संजीदगी से पालन हो। सरकार की तरफ से भी कुछ गंभीर पहल होनी चाहिए। लोकपाल की शीघ्र नियुक्ति हो। सीबीआइ को स्वायत्त बनाया जाए। सूचना आयोगों के खाली पद शीघ्र भरे जाएं।

Date: 19-02-18

सहयोग का सफर

संपादकीय

ईरान के राष्ट्रपति हसन रूहानी की तीन दिवसीय भारत यात्रा दोनों देशों के बीच कारोबारी लिहाज से भी अहम थी और कूटनीतिक नजरिए से भी। उनके साथ आए प्रतिनिधिमंडल में ईरान के कई दिग्गज कारोबारी भी थे। दरअसल, ईरान इस वक्त कई कारणों से भारत से व्यापारिक लेन-देन बढ़ाना चाहता है। सकल घरेलू उत्पाद की दर और सकल पूंजी निर्माण की दर में आई कमी के चलते ईरान सरकार अपने यहां जन-असंतोष का सामना कर रही है। हाल में ईरान के कई शहरों में हुए विरोध-प्रदर्शनों ने उसे चिंता में डाल रखा है। ऐसे वक्त में रूहानी को उम्मीद होगी कि अपने तेल और गैस संसाधनों का उपयोग वे अतिरिक्त पूंजी जुटाने, अपने यहां विदेशी निवेश बढ़ाने और रोजगार के नए अवसर सृजित करने में कर सकते हैं। दूसरी ओर, भारत को भी कई वजहों से ईरान के सहयोग की जरूरत है। चाबहार बंदरगाह के जरिए भारत पाकिस्तान को नजरअंदाज कर अफगानिस्तान तक पहुंच का रास्ता तो पा ही लेगा, मध्य एशिया के देशों तक भी

व्यापारिक आवाजाही कर सकेगा। फिर, ईरान के पास तेल और गैस का प्रचुर भंडार है, और रूहानी ने अपने गैस फील्ड में भारत को निवेश करने की पेशकश भी की है। जहां तक रूहानी की यात्रा के कूटनीतिक महत्त्व का सवाल है, यह दोनों देशों के लिए बराबर है।

अमेरिका की तरफ से लगाए गए प्रतिबंधों के चलते ईरान एक बार फिर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मुश्किलों से गुजर रहा है। उसे विदेश व्यापार में भी कठिनाई हो रही है। ऐसे वक्त में भारत से रिश्ते बेहतर होते हैं और लेन-देन बढ़ता है तो ईरान के लिए यह राहत की बात होगी। भारत से व्यापार में ईरान की बढ़ी हुई दिलचस्पी इससे भी जाहिर होती है कि उसने भारत को अपने यहां ढांचागत और यातायात परियोजनाओं में रुपए में निवेश करने की छूट दे रखी है। ईरान यह भी चाहता है कि अफगानिस्तान सीमा पर भारत रेल लाइन बिछाए। दूसरी तरफ, इजराइल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू की भारत यात्रा के कोई महीने भर बाद ईरान के राष्ट्रपति के आगमन से मोदी सरकार ने पश्चिम एशिया में संतुलन साधने की कोशिश की है। यह माना जा रहा था कि ईरान के प्रति ट्रंप के रुख को देखते हुए ईरान से कारोबार बढ़ाने में भारत को परेशानी या हिचक हो सकती है। लेकिन यह आशंका निराधार साबित हुई। अमेरिका ने साफ कर दिया है कि वह भारत और ईरान के व्यापारिक मामलों में आड़े नहीं आएगा।

एक समय ईरान से पाकिस्तान होकर भारत आने वाली पाइपलाइन परियोजना की बड़ी चर्चा थी, पर यह महत्त्वाकांक्षी परियोजना कभी सिरे नहीं चढ़ पाई। जबकि चाबहार परियोजना की एक बड़ी खासियत यही है कि भारत से अफगानिस्तान जाने वाले माल को पाकिस्तान होकर नहीं जाना पड़ेगा। बहरहाल, बीते शनिवार को रूहानी और प्रधानमंत्री मोदी के बीच चाबहार परियोजना के आगे के क्रियान्वयन से लेकर ईरान के तेल और गैस क्षेत्र में भारत के पूंजीनिवेश की संभावना सहित कई मोर्चों पर आपसी सहयोग बढ़ाने पर बातचीत हुई। दोनों नेताओं ने साझा बयान भी दिए। इस मौके पर दोनों देशों के बीच नौ करार हुए, जो चाबहार और शाहिद बहेस्ती बंदरगाह के अलावा दोहरे कराधान से बचाव, राजनयिक पासपोर्ट धारकों को वीजा से छूट देने, प्रत्यर्पण संधि की पुष्टि तथा दवा और कृषि आदि में आपसी सहयोग से संबंधित हैं।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 19-02-18

अहम साझेदारी

संपादकीय

ईरान के राष्ट्रपति हसन रोहानी की भारत यात्रा से नई दिल्ली और तेहरान के बीच रणनीतिक साझेदारी और पुख्ता हुई और भारत को मध्य एशिया में अपनी पहुंच बढ़ाने का मौका मिला है। इस क्षेत्र से होते हुए यूरोप तक पहुंचने के लिए भारत सक्रिय प्रयास करता रहा है। और दक्षिण-उत्तर गलियारा परियोजना के तहत भारत, रूस और ईरान आपस में सहयोग कर रहे हैं. चाबहार बंदरगाह परियोजना ऐसा ही प्रयास है, जिसके माध्यम से भारत पाकिस्तान पर निर्भर न रहते हुए सीधे अफगानिस्तान और ईरान अपना माल भेज सकेगा।दोनों देशों के बीच कुल नौ समझौते हुए हैं, जिनमें

चाबहार बंदरगाह और दोनों देशों के बीच प्रत्यपर्ण संधि सबसे अहम है। इसके अलावा पारंपरिक स्वास्थ्य और चिकित्सा, कृषि, व्यापार आदि क्षेत्र भी हैं, जिनको लेकर द्विपक्षीय समझौते हुए हैं। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की 2016 में हुई तेहरान यात्रा के बाद से ही दोनों देशों के बीच आपसी सहयोग बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त हुआ था।

चाबहार बंदरगाह भारत के लिए बहुत महत्त्व रखता है क्योंकि पाकिस्तान अपने क्षेत्र से होकर भारत, अफगानिस्तान और ईरान में सामान नहीं भेजने देता है। इसीलिए चाबहार के मसले पर दोनों देशों के बीच जो करार हुआ है, उसके तहत बंदरगाह के एक भाग के 18 माह तक संचालन का अधिकार भारतीय कंपनी को सौंपा गया है, जो भारत की व्यापारिक दृष्टि से अहम है।चाबहार के संबंध में जो समझौते हुए हैं, उसका संदेश चीन, पाकिस्तान ही नहीं बल्कि अमेरिका तक जाता है।

भारत और ईरान दोनों ने अमेरिका की उस धमकी की अनदेखी करते हुए यह समझौता किया है, जो ईरान पर अधिक-से-अधिक प्रतिबंध लगाने का पक्षधर रहता है। आने वाले दिनों में ईरान के खिलाफ अमेरिका कोई नया प्रतिबंध भी लगा सकता है।इस्राइल के साथ भारत के बढ़ते आत्मीय संबंधों के चलते यह धारणा बन रही थी कि भारत अपनी पारंपरिक पश्चिम एशिया की नीति से हट रहा है, लेकिन रोहानी की भारत यात्रा और हाल में हुई मोदी की फिलिस्तीन यात्रा से इस धारणा को गलत साबित करने में मदद मिलेगी।दरअसल, भारत पश्चिम एशिया में संतुलन बनाकर रखना चाहता है। भारत की विदेश नीति स्वतंत्र है और वह किसी के दबाव में आकर काम नहीं करती; ईरान के साथ जो समझौते हुए हैं, वह इस बात को साबित करता है। आने वाले दिनों में भारत और ईरान के बीच आर्थिक व रणनीतिक साझेदारी और पुख्ता होगी, इसकी उम्मीद की जानी चाहिए।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 19-02-18

Seriously, NIA?

Much was expected of the agency, but its argument in prosecution of a photojournalist is bizarre

Editorial

It is a decade since the National Investigation Agency (NIA) was set up in response to an outrageous act of terrorism in India — the sea-borne attack which struck at the heart of Mumbai. There was a perceived need for a sophisticated central agency which could connect the dots between the information silos of the numerous state and central agencies, and deliver a unified response to the threat of terror.

The mission objectives of the NIA are sharply chiseled in its citizen charter: "In-depth professional investigation of scheduled offences using the latest scientific methods of investigation… Developing a professional work force through regular training and exposure to the best practices and procedures… Displaying scientific temper and progressive spirit while discharging the duties assigned."But 10 years after its ambitious beginning, the NIA is prosecuting a free-lance photojournalist for suspected

involvement in stone-pelting, and the flimsy linchpin of its argument is that Kamran Yusuf is insufficiently journalistic. Authentic journalists apparently engage in "nation-building" and their "moral duty" is apparently to cover developmental activities and the inauguration of roads, bridges and hospitals, and other sundry triumphs of the ruling party — according to the NIA. A cub reporter who harboured such a primitive idea of the profession would be very quickly shown the door, and not very politely, either. Yet, this is the basis of a case on which the right to liberty of a citizen of India depends.

The NIA's citizen charter commits it to the protection of human rights and the dignity of the individual. Unfortunately, in the matter of Kamran Yusuf, the agency is found to be unable to preserve even its own dignity. The argument that the photographer's archive contains mostly images of what the government terms "anti-national" activities, and very little public relations on behalf of the state, is either irrelevant or may even suggest good journalism. With such callousness, the NIA could go the way of the CBI, which gained notoriety for bungled investigations and hopeless paperwork, whether in prosecutions or in seeking extradition.The mandate that the NIA was launched with remains critically important — India needs a hub for processing and sharing information across agencies efficiently, and to develop an intelligent national response to terrorism. To perform its role, however, the NIA must display more efficiency and intelligence than it has done in making its case against Kamran Yusuf.

Date: 19-02-18

Can you hear me?

Each of us is being incited to speak to ensure that none of us is actually heard.

Mini Chandran,[The writer is Professor of English, Department of Humanities and Social Sciences, IIT Kanpur]

Our country is characterised by the sheer diversity of its sights, smells and, above everything else, sounds. As a nation, we love to talk and our public spaces, including those of the media, are noisy. This is as it should be because this is a democracy and debate is the essence of a thriving democracy. In recent times, we have been arguing at the top of our voices about the increasing restrictions on precisely that — our right to speak loudly and fearlessly about anything that we consider to be important. Prime-time TV, print media, social media forums and even our private addas are noisy with our opinions about the budget, the latest financial scam, sexual predators in Hollywood, and other things. Rightly so, because we are in a democracy and it is our fundamental right to express freely.

However, our virtual public spaces seem to resemble a "real" public space anywhere in India — crowded and noisy, where people speak and perhaps hear each other but rarely listen. The din of voices raised in argument threatens to drown out everything else; the deafening noise is edging out those feeble voices which cannot assert themselves or make themselves heard. As the nation debates, small, insignificant lives are lived out in tragic ways and nobody pays any attention. Women are thrown out of trains, farmers commit suicide, a six-year-old is raped and killed when she goes out to relieve herself — lives which are considered inconsequential in the larger scheme of things, with which we perhaps sympathise and forget.

We simply do not get the space to think long or deep about them because this is the age of information overload where the method of imparting news appears more like a fusillade and the nature of news is such that it has to be tracked every second. News stories bombard you with information, effectively wiping out all that you had heard or seen a few seconds earlier. Debates get louder and more vociferous while public memory becomes shorter and shorter. The lack of memory disables the ability to keep a sustained interest in any story. Many reports that hit us with a bang taper off without even a whimper and we hardly notice. Barely are our heads out of the floodwaters of the Vyapam scam when another tidal wave of the Panama Papers hits us. The nature of news has become such that we are carried away by another wave which renders us unable to even look back on the earlier one. These debates are necessary and crucial to the sustenance of democracy, but what we also desperately need are silences that allow us to digest and critique the information we are bombarded with.

The lack of silence is paradoxically a silencing force, because it ensures that nobody is heard above the din. The ability of debates to smother any feedback is such that it is effectively becoming another censor that prevents meaningful or constructive discussion on any topic. Democratic debates are thus ironically becoming the most effective ways to throttle a sustained discussion on topics which can prove inconvenient to the power centres. This works more effectively and insidiously than an official censor, all the more dangerous as it maintains the façade of participatory democratic discussion. The term "participatory" is also a moot point, given the fact that the so-called open spaces of primetime TV can carefully pick and choose the participants they want and manipulate the discussion to lead it to the conclusion they wish to arrive at. The print media, too, do not lag far behind in such manufactured consent, as they can choose to publish or not publish what they want to.

In their attempts to outsmart each other in terms of news coverage they too do not have the time or inclination to follow up on earlier stories that might be more relevant or important. Consequently, these debates on electronic and print media merely rake up a lot of noise without constructive feedback or sustained follow-up, making it merely white noise that distracts attention from important matters and nothing more. This is why it is crucial to have periods of relative silence or leisure which allow us to absorb what we have heard and possibly act on that. As Simon and Garfunkel sang in "The Sound of Silence", we are turning into people "talking without speaking/ People hearing without listening". When do we realise that each of us is being incited to speak to ensure that none of us is actually heard? More importantly, how do we act upon this knowledge to strengthen our democratic institutions?

THE HINDU

Date: 19-02-18

For India, it should be neighbourhood first

While other geopolitical issues are important, New Delhi must give South Asia its fullest attention

M.K. Narayanan is a former National Security Adviser and a former Governor of West Bengal

As India's salience in global matters grows — amply demonstrated recently by the presence of 10 leaders from the Association of Southeast Asian Nations (ASEAN) at India's Republic Day celebrations, the visit of Israeli Prime Minister Benjamin Netanyahu to India, and Prime Minister Narendra Modi's latest forays to the United Arab Emirates (UAE), Oman and Palestine — its leaders also need to contemplate and reflect deeply on what is happening in India's immediate neighbourhood.

In the vicinity

Far more than East, South-east Asia, or West Asia, it is India's immediate neighbourhood that directly impacts it geopolitically, geo-strategically and geoeconomically. Whatever be the ambit of India's reach elsewhere, India's principal focus, hence, will need to be on this neighbourhood. India can afford to live with demands such as the one made at the recently concluded ASEAN-India Commemorative Summit, where it was urged to play a pro-active role in the Asia-Pacific region, without needing to take hard decisions. It possibly also does not have to answer questions as to whether ASEAN nations fully back India's membership of the Quadrilateral (Australia, Japan, the United States and India), even as most of them back China's Belt and Road Initiative. India can even afford to skirt the issue as to whether ASEAN-India relations are all embracing in nature or limited only to specific aspects.

In West Asia, India still possesses enough leeway to engage in skilful manoeuvre around contentious issues without having to take a stand. India could, thus, successfully handle an Israeli Prime Minister's visit to India just prior to Mr. Modi's visit to Palestine, and yet avoid a negative fallout. It could also separate the technological "blush" of Mr. Netanyahu's visit without having to take a clear stand on the issue of Jerusalem. Likewise, Mr. Modi, during his Palestine visit could conclude as many as six agreements and express the hope that Palestine would soon emerge as a sovereign independent country in a peaceful manner without having to specifically refer to a "united" and "viable" Palestine.

With the UAE and Oman, things have been easier. With the former, trade and economic ties as also counter-terror aspects have been on a growth curve. With the latter, an established friend, the option of closer naval co-operation and of reaching an agreement to give the Indian Navy access to Duqm port did not prove difficult.

It is in South Asia where troubles are mounting, where India cannot succeed without looking at some hard options. For instance, how to deal with a new government in Nepal (comprising the Left Alliance of the CPN-UML led by Oli and the CPN-Maoist Centre led by Prachanda) with few pretensions as to where its sympathies lie. India also needs to now contemplate the prospect of prolonged unrest and possibly violence, both communal and terror-related, in neighbouring Bangladesh, prior to scheduled elections in 2019. This follows the conviction by a special court in Dhaka of Bangladesh Nationalist Party leader and three-time Prime Minister Khaleda Zia on corruption charges. Dealing with both Nepal and Bangladesh will need more than fine gestures; they will need far more closer monitoring.

Troubled hotspot

Another and a more imminent challenge for India is to sort out the imbroglio in the Maldives which is threatening to spill out of control. No amount of dissimulation will help. India cannot afford not to be directly engaged in finding a proper solution.Relations between India and the Maldives have undergone significant changes since the days of former President Maumoon Abdul Gayoom. After the Maldivian Democratic Party, headed by former President Mohamed Nasheed, came to power, for the first time anti-Indian forces within the Maldives (including radical Islamist groups sponsored by Pakistan and Saudi

Arabia) could muster some support. It was also Mr. Nasheed's initial overtures to China that set the stage for Maldivian-China relations. Under the current President, Abdulla Yameen Abdul Gayoom, anti-Indian tendencies have steadily increased and there has been a pronounced tilt in favour of China. The free trade agreement that the Maldives signed recently with China has been the proverbial thin end of the wedge, providing China with an excellent opportunity to enhance its influence and retain de facto possession of the Southern Atolls in the Maldivian archipelago.

Straddling a strategic part of the Western Indian Ocean, the Maldives today occupies a crucial position along the main shipping lanes in the Indian Ocean. The Southern Maldives has long remained an object of interest to the major powers. With the U.S. taking a step back, China has begun to display a great deal of interest in the area; this coincides with its current outreach into the Indian Ocean Region as also its ongoing plans to take control of Gwadar port (Pakistan) and establish a naval base in Djibouti in the Horn of Africa.

India cannot, hence, afford to remain idle and must come up with an answer soon enough that is consistent with its strategic interests. A muscular reaction would be ill-advised, despite the entreaties of Mr. Nasheed, as the international community is likely to react adversely to any military adventure. China is, meanwhile, playing its cards carefully, calling for "home-grown solutions" and "warning against any military intervention". The critical need is to find a solution early — one that takes into account India's geostrategic and geopolitical interests in the region. Else, it would have far-reaching consequences as far as India's quest for regional power status is concerned.

Across the border

Two other issues, viz., Pakistan and Afghanistan, similarly demand our focussed attention, and that India acts with a sense of responsibility expected of a regional superpower. The virtual collapse of a Pakistan policy seems to affect Pakistan less and India more. The latter is facing a daily haemorrhaging of human lives due to cross border firing and terrorist violence from Pakistan. In spite of its internal political crisis, and U.S. President Donald Trump's fusillade threatening Pakistan with dire consequences if it failed to amend its ways, Pakistan shows no sign of altering its anti-India trajectory. Democratic India can hardly afford to remain as blasé and let things slide, without effectively trying to find ways and means to change a situation which is certainly not to our advantage.Equally vital for India is to try and find a way out of the Afghan morass. The daily massacre of innocents, men, women and children, civilian officials and military personnel, experts from several countries and diplomats, marks the start of the complete collapse of a system of governance.

Despite periodic optimistic forecasts of the Taliban being in retreat, terrorists under check, and that the Afghan government is still in charge, Afghanistan's position today is the worst ever since the 1970s. This January, the capital city of Kabul witnessed one of the worst ever incidents of violence anywhere, in which over 100 civilians were killed following a series of terror strikes. This happened despite the presence of foreign troops, elements of the Afghan military and also of the Afghan police. Notwithstanding the omnipresent Pakistan hand in the violence in Afghanistan, this kind of "engineered chaos" over a prolonged period of time effectively demonstrates that the Afghan state has virtually disintegrated.

The collapse of the Afghan state does have severe consequences for India and nations in the vicinity. As a regional power, India has significant stakes in Afghanistan. Apart from the human cost and the fact that New Delhi has spent over $2 billion in providing humanitarian assistance to Afghanistan, India's true

stake lies in sustaining the future of the Afghan state. Its “shrivelling” or “demise” and any premature end to the attempt to restore peace in Afghanistan will only revive memories of the worst days of the Afghan jihad in the 1980s and 1990s, and India has every reason to feel concerned about the fallout. Of no less consequence is the fact that if Afghanistan were to cease to exist, its civilisational links with India would also evaporate. For a variety of reasons, therefore, India cannot allow Afghanistan to collapse or cease to exist as a state in the modern sense. This is something that demands India’s critical attention, and specially for a display of its leadership skills.

For all these reasons, and apart from those currently at the helm of affairs in India, the leaderships of parties and States across the spectrum must try and achieve a unanimity of purpose in regard to our foreign policy priorities. Today, the focus needs to be on our immediate neighbourhood. The outcome of the Israel-Palestine conflict, the turmoil in the East and South China Seas, or other big-ticket issues across the world are important, but it is South Asia and the neighbourhood that demands our concentrated attention. If India is not seen to be actively involved in ensuring that the region is at peace and functions in conformity with its world view, any claims to leadership would amount to little more than treading water.

Date: 18-02-18

Directing reforms

It is only logical that the sources of income of candidates be disclosed

EDITORIAL

Adding to the growing body of judicially inspired electoral reforms, the Supreme Court has imposed an additional disclosure norm for candidates contesting elections. It has asked the Centre to amend the rules as well as the disclosure form filed by candidates along with their nomination papers, to include the sources of their income, and those of their spouses and dependants. The court has also asked for the establishment of a permanent mechanism to investigate any unexplained or disproportionate increase in the assets of legislators during their tenure. The verdict of the two-judge Bench on a petition from the NGO, Lok Prahari, is one more in a long line of significant verdicts aimed at preserving the purity of the electoral process. These include the direction to provide the ‘NOTA’ option in voting machines, and another striking down a clause that saved sitting legislators from immediate disqualification upon conviction. It has ruled that the act of voting is an expression of free speech, and that it is part of this fundamental right that voters are required to be informed of all relevant details about a contestant. This led to the rule that candidates should furnish details of any criminal antecedents, educational qualifications and assets. If disclosure of assets is mandatory, it is only logical that the sources of income are also revealed. And as it is often seen that there is a dramatic increase in the assets of candidates at every election over what was disclosed in previous affidavits, it stands to reason that any rise should be explained or probed.

Few will dispute that lawmakers amassing wealth or gaining unusual access to public funds and loans are concerns that need to be addressed through new norms. To give teeth to its order, the court has made it clear that non-disclosure of assets and their sources would amount to a “corrupt practice” under Section

123 of the Representation of the People Act, 1951. Lest a question be raised whether the court's order to amend the relevant rules amounted to legislation, the Bench has said it sees no "legal or normative impediment", as the Centre is empowered by the Act to frame rules in consultation with the Election Commission. The idea of a permanent mechanism to collect data about the assets of legislators and periodically examine them is laudable, but it is not clear which authority will run it. The court envisions a body that would make recommendations for prosecution or disqualification based on its own findings. The Centre and the Election Commission will have to jointly address the issue. The larger message from the verdict is that a fully informed electorate and transparent candidature will be key components of future elections in India.